



## International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519  
IJSR 2017; 3(3): 339-340  
© 2017 IJSR  
www.anantaajournal.com  
Received: 25-03-2017  
Accepted: 26-04-2017

Satish  
Research Scholar, Sanskrit  
Department, Delhi University,  
Delhi, India

### काव्यात्मरूप "ध्वनि" की भूमिका

Satish

प्रस्तावना

ध्वनिकार आचार्य आनन्दवर्धन ध्वन्यालोक की प्रथम कारिका में समस्त ध्वनिविरोधी मतों का निरूपण कर द्वितीय कारिका से बारहवीं कारिका तक ध्वनि की भूमिका को उपस्थापित करते हैं। ध्वनिकार के द्वारा प्रस्तुत द्वितीय कारिका—

योऽर्थः सहृदयश्लाघयः काव्यात्मेति व्यवस्थितः।  
वाच्य प्रतीयमानाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ ॥ (ध्व. 1.2)

साधारण विचार वालों को भ्रम में डाल देने वाली है। इस द्वितीय कारिका में "अर्थ" के दो भेद किये गये हैं— वाच्य एवं प्रतीयमान।

अब यहाँ पर यह भ्रम उत्पन्न होता है कि वाच्य अर्थ ध्वनि भेद के अन्तर्गत कैसे आ सकता है— इस शब्दका के निवारणार्थ लोचनकार अभिनवगुप्त कहते हैं कि— "वहाँ पर यह कारिका ध्वनिसिद्धान्त के लक्षण की भूमिका है। भूमिका का अर्थ होता है— भूमि के समान। "ध्वनि" एक प्रासाद है, जिस प्रकार नवीन प्रासाद का निर्माण करने के लिए पहले भूमि तैयार की जाती है, उसी प्रकार ध्वनिरूपी प्रासाद के लिए भूमिका के रूप में निर्विवाद सिद्ध वाच्यार्थ का अभिधान किया गया है। क्योंकि अर्थ का अधिक भाग प्रतीयमानार्थ वाच्यार्थ के आधार पर ही प्रतीतिगोचर होता है।" (ध्व. लो. 1.2 व्याख्या)

इस प्रकार सामान्य अर्थ और सहृदयश्लाघ्य अर्थ का भेद हर विचारशील व्यक्ति समझ सकता है। यहाँ पर अर्थ की दृष्टि से वाच्य और प्रतीयमान एक होने पर भी ध्वनिकार ने सहृदय श्लाघ्य इस विशेषण विभाग की दृष्टि से उस अर्थ के दो भेद बताये हैं।

दीपशिखाकार आचार्य चण्डिका प्रसाद शुक्ल लोचनकार के मत को ही स्पष्ट करते हुए कहते हैं—  
"सहृदयश्लाघ्य अर्थ ही काव्य का प्राण होता है और उसके दो भाग होते हैं

1. वाच्य भाग
2. प्रतीयमान भाग।

प्रतीयमान भाग के अभाव में काव्य में विद्यमान केवल वाच्य भाग की तो सहृदय लोग प्रशंसा ही नहीं करते" (ध्व. दी. पृ.11)

तदनन्तर ध्वनिकार वाच्य अर्थ जो उपमा आदि अर्थालङ्कारों में प्रसिद्ध है उसके लक्षण को नहीं दर्शाते हैं। क्योंकि उपमादि अर्थालङ्कार काव्य में वाच्य अर्थ के ही धर्म हैं, जिनसे युक्त होने पर लक्षणा द्वारा वाच्य अर्थ उन अलङ्कारों के ही रूप कहे जाते हैं। इस प्रकार ध्वनिकार ने इसका विस्तारपूर्वक निरूपण न करते हुए केवल आवश्यकतानुसार उल्लेख किया है।

प्रतीयमानार्थ

ध्वनिकार ने सहृदयश्लाघ्य अर्थ के द्वितीय भेद के रूप प्रतीयमानार्थ को माना है। इस ध्वनि सिद्धान्त की महत्वपूर्ण भूमिका में प्रतीयमानार्थ को ही उदाहरणों द्वारा वाच्यार्थ से सर्वथा भिन्न दर्शाया गया है। प्राचीन आचार्यों के यहाँ एकमात्र वाच्य को केन्द्र बिन्दु बनाकर तथा प्रायः उसकी ही सीमा में रहकर काव्य के विविध तत्वों का परीक्षण किया गया। अतएव वे काव्य के बाह्य अलङ्करण को ही काव्य का सर्वस्व समझ बैठे, किन्तु तत्पश्चाद्द्वितीय ध्वनिकार की दृष्टि जब कवि वाणी के आभ्यन्तर चमत्कार पर गई, तब पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा प्रतिपादित शब्द और अर्थ के बाह्य स्वरूप की प्रधानता अप्रधान सी प्रतीत होने लगी, तथा महाकवियों द्वारा विरचित रामायण महाभारत प्रभृति सभी ग्रन्थों में स्फुरित प्रतीयमानार्थ प्रतीत होने लगा।

Correspondence  
Satish  
Research Scholar, Sanskrit  
Department, Delhi University,  
Delhi, India

ध्वनिनामक काव्य विशेष में आत्मा या श्रेष्ठ अंश प्रतीयमान ही रहता है, किन्तु गुणीभूतव्यङ्ग्य नामक काव्यविशेष में तो प्रायः वाच्य अर्थ ही श्रेष्ठ रहता है। उसी व्यङ्ग्यार्थ (प्रतीयमानार्थ) के स्वरूप विवेचन में ध्वनिकार कहते हैं—

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।  
यत्तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु।।  
ध्व. 1.4

अर्थात् महाकवियों की वाणियों में वह प्रतीयमान कुछ और ही है, जो वह प्रसिद्ध अवयवों से अतिरिक्त रूप में अङ्गनाओं में लावण्य की भाँति भासित होता है।

“लोचनकार ने इस प्रतीयमानार्थ के दो भेद माने हैं

1. लौकिक
2. काव्यव्यापारैकगोचर (ध्व. लो. पृ. 50)

इन दोनों भेदों में ही वे इस ध्वनिकाव्य के तीनों ध्वनिप्रभेदों (वस्तुध्वनि, अलङ्कार ध्वनि, और रसध्वनि) को विस्तृत व्याख्यान के द्वारा सिद्ध कर देते हैं। तदनन्तर वृत्तिभाग की टीका में वे भट्टनायक के द्वारा प्रतिपादित प्रतीयमानार्थ की परिभाषा को स्पष्ट करते हैं— “अंशत्वं न रूपता”

(ध्व.लो. पृ. 51)

अर्थात् ध्वनि नाम का जो अन्य व्यञ्जनारूप व्यापार है, उसका वाच्य से भेद सिद्ध होने पर भी काव्य में अंशत्व होगा, रूपता या अंशित्व नहीं।

किन्तु दीपशिखाकार ने इतना मतिविश्लेषण न करते हुए ध्वनिकाव्य के तीनों ध्वनि प्रभेदों में वाच्यार्थपूर्वत्व ही माना है, तथा अनलङ्कृत रूप वस्तुविशेष के ज्ञान को प्रथम प्रभेद में, वाच्यरूप उपमादि को ब्राह्मणश्रमणन्याय के द्वारा अलङ्काररूप द्वितीय प्रभेद में, एवं रसादिरूप—आदि ग्रहण से (भाव रसाभास—भावाभास—भावोदय—भावसन्धि भावशबलता) उक्त भेदों का भी ग्रहण हो जाता है, को तृतीय प्रभेद रूप में दर्शाया है।

उक्त प्रभेद ध्वनिकार के द्वारा पूर्व में ही निरूपित हैं, किन्तु लोचनकार ने प्रतीयमानार्थ के जो द्विविध भेद किये थे, जिससे विषय वस्तु अनवबोध की स्थिति को प्राप्त हो रही थी, उसके निराकरणार्थ दीपशिखाकार ने इसे पुनः स्वव्याख्या में स्पष्ट किया। इस प्रकार प्रतीयमानार्थ व्यङ्ग्यार्थ को विविध रूपों में दर्शाते हुए वाच्यार्थ से उसकी प्रधानता को अनेको उदाहरणों के द्वारा निरूपित किया गया है। जैसे—

‘सरस्वती स्वादु तदर्थवस्तु.....  
परिस्फुरन्तं प्रतिभा विशेषम्।’ ध्व. 1.6  
वेद्यते स तु काव्यार्थतत्त्वज्ञैरेव केवलम्।।1.7  
सोऽर्थस्तदव्यक्ति सामर्थ्ययोगी शब्दश्च कश्चन।  
यत्नतः प्रत्यभिज्ञेयौ तौ शब्दार्थौ महाकवेः।।1.8

प्रस्तुत श्लोकों में उस प्रतीयमानार्थ की प्रधानता को स्पष्ट कर रहे हैं कि वह प्रतीयमानार्थ (व्यङ्ग्यार्थ) अपूर्व वस्तु के निर्माण में समर्थ प्रज्ञा के द्वारा ही बोधगम्य है। तथा उस बोधगम्य अर्थ को जानने से पूर्व हमें वाच्यार्थ का ज्ञान अवश्य होना चाहिए, क्योंकि वाच्यार्थ के द्वारा ही हमें अन्यार्थ की प्रतीति होती है।

इस प्रकार ध्वनिकार आनन्दवर्धन ने द्वितीय कारिका से द्वादश कारिका पर्यन्त काव्यात्मरूप ध्वनितत्त्व के भूमिका रूप में इसके दो भेदों एवं द्वितीय भेद प्रतीयमानार्थ के स्वरूप को वाच्यार्थ से पृथक् एवं इसकी प्रधानता को दर्शाते हुए काव्यविशेष ध्वनि की भूमि को उपस्थापित किया। जिसे प्राचीन टीकाकार अभिनवगुप्त ने एवं अर्वाचीन टीकाकार चण्डिकाप्रसादशुक्ल ने बोधगम्य बनाया।